



WWJMRD 2020; 6(7): 1-4
www.wwjmr.com
International Journal
Peer Reviewed Journal
Refereed Journal
Indexed Journal
Impact Factor MJIF: 4.25
E-ISSN: 2454-6615

नेहा शर्मा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अलीगढ़
मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, भारत

इक्कीसवीं सदी की चुनौतियाँ और कबीर

नेहा शर्मा

सारांश

अधःपतन को दूर करने के लिए ही प्रत्येक युग में महान विभूतियों का जन्म होता रहा है और इन्हीं महान विभूतियों में कबीर का नाम उल्लेखनीय है। कबीर का युग रूढ़ियों, अंधविश्वासों और कर्मकांडों से भरा था। सशक्त अशक्त और कमजोर का शोषण कर रहा था। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। कोई किसी की बात नहीं सुनता था। लोग आडंबरपूर्ण साधना एवं मिथ्याचार में डूबे हुए थे। हिंदू और मुसलमान आपसी संघर्ष में, अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करने में निरत थे। समाज में बहुत सारी बुराइयाँ व्याप्त थीं। कोई भी खुलकर इन सभी बुराइयों का विरोध करने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था और ऐसे समय में कबीर ने समाज को एक नई दृष्टि एवं दिशा देने का काम किया। जाति, धर्म और वर्गीय शोषण जैसी समस्याएँ आज भी बरकरार हैं इसलिए कबीर की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गयी है।

मूलशब्द: सांप्रदायिकता, ब्राह्मणवाद, मिथ्याचार, प्रासंगिकता इत्यादि।

प्रस्तावना

आज इक्कीसवीं सदी में बैठकर हम पंद्रहवीं सदी के एक संत कवि पर विचार कर रहे हैं जिन्होंने न केवल अपने समय की बल्कि अपने समय से बहुत आगे की परिस्थितियों को पहचान लिया था। उन्होंने न केवल सदियों से चली आ रही शोषणपरक व्यवस्था की पहचान की बल्कि मुखर होकर उसको सबके सामने उजागर भी किया। कबीर दास जाति से जुलाहे थे और उनका जन्म काशी में हुआ था, जो ब्राह्मणों का गढ़ था। ब्राह्मणवादी व्यवस्था के गढ़ में बैठकर ब्राह्मणवाद पर वे प्रहार करते रहे। उन्होंने पहला प्रहार चातुर्वर्ण्य व्यवस्था पर ही किया।

जिस तरह आज साहित्य के नाम पर केवल शब्दजाल बुना जा रहा है और कागजों का ढेर इकट्ठा किया जा रहा है उससे साहित्य और समाज किसी का भला नहीं होना है। कबीर की वाणी सिर्फ 'कला कला के लिए' उद्देश्य को लेकर नहीं चली बल्कि उनकी कला हमेशा समाज के लिए ही रही। आलोचक बच्चन सिंह लिखते हैं "कबीर ने साहित्य के लिए साहित्य नहीं लिखा। मस्तमौला राम को साहित्य से क्या मतलब? पर उनका उच्छल आवेग, मानवीय संवेदना, गहरा जीवन-बोध उनके 'कहन' को साहित्य बना देते हैं। वास्तविकता तो यह है कि वे एक लड़ाई लड़ रहे थे – अपने लिए नहीं, दीनजनों के लिए। उनके समय में एक ओर समांतगण, पंडे-मुल्ला अपने स्वार्थ के लिए लड़ रहे थे तो कबीर निम्न वर्ग के लिए उनके शूर का आदर्श था-

“सूरा सो पहिचानियै लरै दीन के हेत।

पुरजा पुरजा कटि मरै कबहुँ न छांडे खेता।”¹

कबीर ने सामाजिक विषमता पर प्रहार करने के बाद सामाजिक शोषण के विभिन्न औजारों को कुंद करने

Correspondence:

नेहा शर्मा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अलीगढ़
मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, भारत

कि आवश्यकता महसूस की। पंडितों और मुल्लाओं के लिए धार्मिक आधार पर समाज के शोषण का आधार है उनकी धार्मिक पुस्तकें। ये धार्मिक पुस्तकें और इनका ज्ञान कुछ ही व्यक्तियों के पास सीमित होता है जो अपने अनुसार इसकी व्याख्या करते हैं और अपनी सुविधानुसार कर्मकांडों को प्रश्रय देते जाते हैं। भारतीय वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का एक मापदंड उनका वेदशास्त्र ज्ञानसंपन्न होना भी रहा है। जिसका अध्ययन शूद्रों और स्त्रियों के लिए वर्जित कर दिया गया था। वेद, पुराण, बाइबल, कुरान को ईश्वरीय पुस्तकें बताकर इनकी अपने अनुसार व्याख्या को ईश्वरीय आदेश कहा और इंसान-इंसान में भेद कर दिया। कबीरदास इन पोथीधारियों के थोथे ज्ञान व अहंकार, जिसमें सिवाय ऊंच-नीच और भेदभाव के कुछ नहीं दिखाई देता था को एक ही पंक्ति में स्पष्ट कर दिया-

“पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भय न कोया

ढाई आखर प्रेम का पढे सो पंडित होय ॥”²

कबीर का विद्रोह केवल विध्वंसकारी नहीं था बल्कि जर्जर और मृतप्राय परम्पराओं को तोड़ने की बात करते हैं तो उसके बरक्स एक सही मार्ग भी दिखाते हैं। “बिना उद्देश्य का विद्रोह विनाशक है, पर साधु उद्देश्य से प्रणोदित विद्रोह शूर क धर्म है। उन्होंने अटल विश्वास के साथ अपने प्रेम-मार्ग क प्रतिपादन किया। रूढ़ियों और कुसंस्कारों की विशाल वाहिनी से वह आजीवन जूझते रहे, प्रलोभन और आघात, काम और क्रोध भी उनके मार्ग में ज़रूर खड़े हुये होंगे, उन्होंने उनको असीम साहस के साथ जीता।”³ जाति प्रथा पर उन्होंने काफी आक्रोश दिखाया। उन्होंने जाति प्रथा पर चोट करते हुए कहा है कि अगर कोई व्यक्ति उच्च कुल में जन्म लेता है तो वह केवल इससे महान नहीं बन सकता। बल्कि उसे महान बनने के लिए कर्म अच्छे करने होंगे। जैसे अगर सोने के कलश में शराब रखी हो तो सज्जन लोग उसकी निंदा ही करेंगे। कबीरदास तीथार्दन को भी व्यर्थ मानते थे। उन्होंने मन की मुहिर और सत्संग पर समान रूप से बल दिया। उन्होंने वेदपाठ, तीर्थ-स्थान, ब्रतोपासना, छुआछूत, अवतारोपासना, कर्मकांड आदि पर प्रहार किया। कबीरदास कहते हैं कि साधु संगति और भक्ति के बिना मथुरा, द्वारका, पुरी जाने से कुछ भी हाथ नहीं आएगा इसी के साथ ही उन लोगों को भी आईना दिखाते हैं जो जाति और धर्म के आधार पर इंसान-इंसान में भेद करते हैं।

कबीरदास जी का मत था कि एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ तक घूम आने से अधिक से अधिक बाहरी शरीर की धुलाई हो जाती है। भीतरी शुद्धि कैसे हो सकती है?

कबीरदास जी ने मूर्ति पूजा की कटु आलोचना की है। वे निराकार ब्रह्म के उपासक थे। मूर्ति पूजा के खोखलेपन की पोल खोलते हुए कबीर दास जी कहते हैं कि ‘पत्थर पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजूं पहार’ वहीं मुसलमानों को भी फटकारते हैं कि ‘कंकड़ पत्थर जोड़

के, मस्जिद लई बनाय’। कबीर दास जी ने बाह्याडंबर, दिखावा और पाखंड की भर्त्सना की है। कबीर ने सामाजिक जीवन में नीति, सदाचार और नम्रता की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने अहंकार, घमंड का त्यागकर सदाचार के महत्व पर जोर दिया है। उन्होंने कहा सबकी उत्पत्ति समान रूप से होती है, वर्णाभिमान और श्रेष्ठता का दम्भ व्यर्थ है। जातिगत या नस्लगत श्रेष्ठता का भाव आज भी समाज में बना हुआ है किन्तु किसी भी ऊंचे घराने में जन्म लेने मात्र से कोई श्रेष्ठ नहीं होता इस बात की पहचान कबीर ने कर ली थी और दृढ़ता के साथ इसको कहते रहे। कर्म श्रेष्ठ होने से व्यक्ति का महत्व होता है जाति और नस्ल नहीं-

“ऊंचे कुल का जनमियाँ, जे करनी ऊंच न होया

सुवरण कलास सुरै भरया, साधू निंदा सोया॥”⁴

आज भौतिकतावादी समाज में सुख-सुविधाओं के लिए तमाम साधन जुटाने में लोग लगे हैं। जिसके कारण प्रकृति का भी अपरिमित दोहन किया जा रहा है साथ ही लोगों में भी दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं। संग्रह करने की मनोवृत्ति का खंडन किया और अपरिग्रह का उपदेश दिया। कबीर दास जी भगवान से कहते हैं —

“साई इतना दीजिए, जामें कुटुम समया

मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥”⁵

कबीर ने शारीरिक परिश्रम पर बल दिया है और वचनकारों ने कायक (शारीरिक परिश्रम) को अनिवार्य माना है। कबीर जीवन भर जुलाहे का काम करते रहे। उन्होंने कभी भी जुलाहे की वृत्ति त्यागने का प्रयत्न नहीं किया। बल्कि स्वयं सबसे कहते रहे कि वे जुलाहा हैं। कपड़ा बुनना उनका पेशा था। बड़ी निष्ठा से परिश्रम करने पर जोर दिया करते हैं। उनके साहित्यिक अवदान का विश्लेषण करते हुये बच्चन सिंह लिखते हैं कि “लोकप्रियता में उनके समकक्ष गोस्वामी तुलसीदास हैं। तुलसी बड़े कवि हैं, उनका सौंदर्यबोध पारंपरिक और आदर्शवादी है। कबीर का सौंदर्य-बोध अपारंपरिक और यथार्थवादी है। अतः उनके लिए पृथक सौंदर्यशास्त्र का निर्माण करना पड़ेगा।”⁶ ये सौंदर्यशास्त्र कबीर का अपना था जो उन्होंने श्रम से प्राप्त किया था।

इस प्रकार कबीरदास ने अपने जीवन में जो कुछ अनुभव किया और उससे जो कुछ सीखा उन्होंने लोगों को बताया और जो वास्तव में गलत था उसका निडरता और साहस के साथ खुलकर विरोध किया। कबीर का अपने कर्म और वाणी दोनों पर इतना अटूट विश्वास था कि इसके लिए उन्होंने ईश्वर तक को चुनौती दी है। उनका सीधा सा बिना लाग-लपेट के यही कहना था कि अगर हमारा मन साफ है, आचरण शुद्ध है तो किसी भगवान के पीछे भागने कि ज़रूरत नहीं है बल्कि भगवान खुद आपके पास आएंगे। यही आत्मविश्वास कबीर को अन्य कवियों से अलग भी करती है। कबीरदास को किसी एक धर्म या सपरदाय में नहीं बांधा जा सकता है वे एक सच्चे इंसान थे जिनका मजहब भी केवल इंसानियत ही था। द्विवेदी जी लिखते हैं कि “वे मुसलमान होकर भी असल में

मुसलमान नहीं थे वे हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे वे साधु होकर भी साधु (अगृहस्थ) नहीं थे वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे वे योगी होकर भी योगी नहीं थे वे कुछ भगवान की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गए थे।”⁷

आज के दौर में भाषा की क्लिष्टता और उसकी श्रेष्ठता को लेकर बहस होती रहती है। कबीर की भाषा सरल है। उनकी भाषा में पंजाबीपन अधिक है। डॉ. रामकुमार वर्मा कबीर की भाषा बनारसी या पश्चिमी भोजपुरी मानते हैं। कबीर देश भ्रमण करते थे, अतः यह संभव है कि उन्हें ब्रज, खड़ी बोली तथा कोसली (अवधी) का ज्ञान प्राप्त हुआ और इन भाषाओं में रचना की। (अनुमानतः) इनकी रचनाओं में कई भाषाओं (बोलियों) का मिश्रण है। जिससे भाषाविज्ञानियों को अलग-अलग भाषाओं पर शोध सामग्री भी इनकी रचनाओं में मिल जाती है।

जिस तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टि से आज हम अपने रीति-रिवाजों, त्योहारों आदि की सार्थकता और औचित्य का मूल्यांकन करते हैं ठीक यही नज़रिया कबीरदास का पंद्रहवीं सदी में था। यहाँ तक कि पारिवारिक सम्बन्धों में जो औपचारिकताएँ होती हैं उनका भी भंडाफोड़ कर दिया है। जो बात प्रेमचंद अपने प्रसिद्ध उपन्यास गोदान में उठाते हैं कि एक किसान होरी जीवन भर एक गाय पालने की अधूरी ख्वाहिश लिए मर जाता है और उसके मरने के बाद उसके नाम पर गोदान कराया जाता है, इसी शोषणपरक व्यवस्था की पहचान कबीर ने बहुत पहले कर ली थी। गरीबी में जहाँ खाने को लाले पड़ रहे हों वहाँ मृत्युभोज कराया जाता है, जो पुत्र जीवित होने पर माता-पिता की सेवा नहीं करता मरने पर श्राद्ध और पिंडदान कराया जाता है। वेद और धर्मग्रंथ इन लोकाचारों को पूरा-पूरा समर्थन देते हैं। कबीर इस हास्यास्पद लोकाचार के विषय में कहते हैं —

“जीवत पित्रहिं मारहिं डंडा । मूवां पित्र ले घालै गंगा।।
जीवत पित्रकूं अन न ख्वावें । मूवा पाछे प्यंड परावै ।।
जीवत पित्र कूं बोलै अपराध । मूवा पीछे देहि सराधा।।
कहै कबीर मोहि अचिरज आवै । कऊआ खाइ पित्र क्यूं पावै।।”⁸

इतनी अधिक प्रगति के बाद भी आज हम धर्म, मज़हब और संप्रदाय के नाम पर टकराव देखते हैं। जबकि विज्ञान के माध्यम से भी सिद्ध हो चुका है कि सभी तत्वों में एक समान तत्व (ईश्वरतत्व - गॉड पार्टिकल्स) है। फिर भी आज हम इस चीज को मानने के लिए तैयार नहीं होते हैं। आज भी समाज में छुआछूत, भेद-भाव और बाह्याडंबर व्याप्त है। कबीर ने सबसे अधिक जिस बात का विरोध किया था वह है मूर्तिपूजा। मूर्तिपूजा आज भी विद्यमान है। आज भी लोग अधिक से अधिक संग्रह करने की होड़ में लगे हुए हैं। मंदिर और मस्जिद के नाम पर लड़ाई करते हैं। आत्मशुद्धि एवं चित्त की निर्मलता की ज़रूरत सदैव रहेगी जिसको उन्होंने हमेशा सराहा है। उनका आत्मविश्वास उनकी वाणियों में झलकता है

क्योंकि उन्हें अपने कर्म पर भरोसा है और कर्म सच्चा है तो किसी के सामने हाथ फैलाने की ज़रूरत नहीं। आज भी लोग मंदिर, मस्जिद, चर्च में जाकर कनफेशन करते हैं, प्रार्थना करते हैं किन्तु व्यक्ति अगर अपने मन को निर्मल कर ले तो किसी भी सत्ता के आगे झुकने की ज़रूरत नहीं। मध्यकाल में जब कोई ईश्वर के विरुद्ध जाने की सोच नहीं सकता था तब भी कबीर पूरे आत्मविश्वास से कहते हैं-

“कबीर मन निरमल भया, जैसा गंगा नीरा।

तब पाछे लागा हरी फिरै, कहत कबीर कबीरा।।”⁹

आज जहाँ लोग बाग दूसरों पर बड़ी आसानी से कीचड़ उछालने लगते हैं या उनकी निर्मम आलोचना करने लगते हैं किन्तु स्वयं की आलोचना सुनने का साहस नहीं रखते, वहीं कबीर ने खुलकर आलोचना को स्वीकारने की बात कही है क्योंकि कबीर स्वयं भी किसी भी विसंगति को देखकर चुप रहने वाले नहीं थे। शास्त्रों में कहा गया है कि ‘वीरः वीरेण पूज्यते’ अर्थात् एक सच्चा वीर ही दूसरे वीर को सम्मान दे सकता है। इसी प्रकार एक सच्चा आलोचक भी दूसरे आलोचक की आलोचना खुलकर स्वीकार करते हैं-

“निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाया।

बिनु साबुन पानी बिना, निरमल करें सुभाया।।”¹⁰

हम विज्ञान की चरम उपलब्धि के युग में जी रहे हैं। मनुष्य अपने बुद्धिबल से प्रकृति के तमाम अज्ञात रहस्यों को उजागर कर चुका है। सुख सुविधा के तमाम साधन आविष्कृत हो चुके हैं। विश्व भर की भौतिक दूरी अब सिमट गयी है। भूमंडलीकरण ने पूरे विश्व को एक ग्राम में तब्दील कर दिया है। पुरानी मान्यताओं और मूल्यों पर लगातार सवाल खड़े किए जा रहे हैं। आर्थिक विषमता के कारण अपराध और कई प्रकार की समस्याएँ बढ़ गयी हैं। इस संदर्भ में कबीर का चिंतन और उनकी वाणी कितनी प्रासंगिक है या वे अपने उद्देश्य में कितने सफल हुए, इस पर द्विवेदी जी का कथन उद्धृत करना समीचीन होगा जिनका मत है कि “सफलता महिमा कि एकमात्र कसौटी नहीं है। आज शायद यह सत्य निबिड़ भाव से अनुभव किया जानेवाला है कि सबकी विशेषताओं को रखकर मानव-मिलन की साधारण भूमिका नहीं तैयार की जा सकती। जातिगत, कुलगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत, शास्त्रगत, संप्रदायगत बहुतेरी विशेषताओं के जाल को छिन्न करके ही वह आसन तैयार किया जा सकता है जहाँ एक मनुष्य दूसरे से मनुष्य की हैसियत से ही मिले। जब तक यह नहीं होता तब तक अशांति रहेगी, मारामारी रहेगी, हिंसा- प्रतिस्पर्धा रहेगी। कबीरदास ने इस महती साधना का बीज बोया था। फल क्या हुआ, यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है।”¹¹ आज कबीर इन्हीं विशेषताओं के कारण में हमारे अधिक करीब नज़र आते हैं।

वर्तमान समय में कथनी-करनी का भेद, सांप्रदायिक हिंसा, वर्ण, जाति, धर्म, नस्ल, भाषा के आधार पर भेदभाव जैसी समस्याएँ

अपने रूप परिवर्तन के साथ मौजूद हैं। अतः हम कह सकते हैं कि कबीर दास जी ने जिन सामाजिक रूढ़ियों एवं बुराइयों का विरोध किया था वह आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है जिसके उपचार के लिए कबीरदास जैसे संत और यूगद्रष्टा आज भी हमारे लिए प्रसंगिक हैं। जब तक मानव और समाज रहेगा कबीर जैसे विभूति की प्रासंगिकता बनी ही रहेगी।

संदर्भ –

1. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2014, पृष्ठ संख्या- 88-89.
2. तिवारी, पारसनाथ (सं.), कबीर ग्रंथावली, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, प्रथम संस्करण- 1961, पृष्ठ संख्या- 241.
3. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2014, पृष्ठ संख्या- 146.
4. तिवारी, पारसनाथ (सं.), कबीर ग्रंथावली, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, प्रथम संस्करण- 1961, पृष्ठ संख्या- 6.
5. शर्मा, रंकिशोर (सं.), कबीर ग्रंथावली, लोकभरी प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण- 2015, पृष्ठ संख्या- 105.
6. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2014, पृष्ठ संख्या- 91.
7. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2014, पृष्ठ संख्या – 75.
8. शर्मा, रंकिशोर (सं.), कबीर ग्रंथावली, लोकभरी प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण- 2015, पृष्ठ संख्या- 69.
9. तिवारी, पारसनाथ (सं.), कबीर ग्रंथावली, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, प्रथम संस्करण- 1961, पृष्ठ संख्या- 207.
10. तिवारी, पारसनाथ (सं.), कबीर ग्रंथावली, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, प्रथम संस्करण- 1961, पृष्ठ संख्या- 218.
11. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2014, पृष्ठ संख्या- 147.